ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor (RJIF): 8.4
IJAR 2023; 9(10): 120-125
www.allresearchjournal.com
Received: 12-08-2023
Accepted: 16-09-2023

रेनू
अतिथि प्रोफेसर, आर. डी. एस., कॉलेज, रेवाडी, हरियाणा, भारत

Corresponding Author:
रेनू
अतिथि प्रोफेसर, आर. डी. एस., कॉलेज, रेवाडी, हरियाणा, भारत

भारत में अपातकाल (1975) और इन्दिरा गांधी द्वारा किए राजनीतिक परिवर्तन

रेनू

सारांश
आपातकाल वह चरम स्थिति है जब राष्ट्र अपनी संवैधानिक मशीनरी में विफल हो जाता है। भारत के राष्ट्रपति आपातकाल की घोषणा तब कर सकते हैं जब भारत या भारत के किसी हिस्से की सुरक्षा को युद्ध या बाहरी आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह से खतरा हो। वह भारत के किसी भी हिस्से में आपातकाल की घोषणा कर सकता है। अनुच्छेद 352 के तहत घटना की वास्तविक घटना आवश्यक नहीं है। भारत में आपातकाल की अवधि 1975 से 1977 तक 21 महीनों को संदर्भित करती है जब भारत की प्रधान मंत्री इंदिरा गांधी द्वारा देश भर में आपातकाल की घोषणा की जाती है। आपातकाल का प्रभाव 25 जून 1975 से 21 मार्च 1977 तक रहा। आपातकाल की घोषणा हो सकती है केवल कैबिनेट मंत्रियों की सहमति से ही किया जाना चाहिए, न कि केवल प्रधान मंत्री की सलाह से, जैसा कि इंदिरा गांधी ने जून 1975 में किया था, उन्होंने राष्ट्रपति को सलाह दी थी कि वे कैबिनेट से परामर्श किए बिना ही घोषणा करें। आपातकाल की उद्घोषणा अनुच्छेद 20 और 21 को छोड़कर मौलिक अधिकारों और कानूनी कर्तव्यों को स्वचालित रूप से निलंबित कर देती है। आपातकाल के परिणामस्वरूप राजनीतिक मामलों में निर्णायक मोड़ आ जाता है।

कूटशब्द : प्राति आपातकाल, राजनीतिक परिवर्तन, इन्दिरा गांधी, सशक्तिकरण।

प्रस्तावना
स्वतंत्र भारत में कांग्रेस पार्टी ने देश की बागडोर संभाली। 1950 से 1960 के दशक में केंद्र में एकल पार्टी का प्रभुत्व कुछ हद तक पूर्वानुमानित और अपरिहार्य था। 70 के दशक की शुरुआत से एक–दलीय प्रभुत्व धीरे–धीरे एक (महिला) व्यक्ति और बाद में एक–परिवार का वर्चस्व बन गया। इसके बाद कई वर्षों तक नेहरू–गांधी परिवार इस देश में राजनीतिक सत्ता का पर्याय बन गया। 1947 में ब्रिटिश शासन से आजादी मिलने के बाद जवाहरलाल नेहरू भारत के पहले प्रधान मंत्री थे। उनकी बेटी, इंदिरा गांधी 1966 में संयोग से सत्ता में आईं। वह कांग्रेस के दिग्गजों की 'समझौता'[1] उम्मीदवार थीं और जब उन्हें प्रधान मंत्री पद पर शामिल किया गया तो पार्टी संगठन पर उनकी पकड़ बहुत कम थी। उन्हें संसद में विपक्ष द्वारा उत्पीड़न और उपहास का शिकार होना पड़ा और यहां तक कि डॉ. राम मोहन लोहिया[2] ने उन्हें "गूंगी गुड़िया" (गूंगी गुड़िया या कठपुतली) भी कहा। प्रधान मंत्री के रूप में अपने पहले कार्यकाल में उन्हें अपनी पार्टी के अंदर और शासन में परेशानियों का सामना करना पड़ा क्योंकि कांग्रेस के भीतर उनकी स्थिति कमजोर और असुरक्षित बनी हुई थी। वह धीरे–धीरे परिपक्व हुई, पार्टी में और बाहर अपने विरोधियों से लड़ीं और 70 के दशक की शुरुआत में एक महान व्यक्तित्व बन गईं। कई अन्य कारकों के साथ उनकी राजनीतिक अजेयता के कारण 1971 के बाद भारतीय राजनीतिक परिदृश्य में उनका कद बढ़ गया। 1975–1977 के दौरान श्रीमती गांधी द्वारा घोषित आंतरिक आपातकाल की जड़ें देश में उनके द्वारा हासिल किए गए सर्वोच्च कद में थीं। आपातकाल लगाने का अन्य कारण उनके छोटे बेटे संजय पर भावनात्मक क्षमता के साथ–साथ प्रशासन के मामले में अत्यधिक निर्भरता और संजय गांधी और उनकी मंडली द्वारा हेरफेर का अत्यधिक इरादा था। उनके बेटे, संजय गांधी चाहते थे कि भारत राष्ट्रपति शासन व्यवस्था अपनाए और अपनी मां को आजीवन देश की राष्ट्रपति के रूप में देखे।[3] जैसा कि राजनीतिक टिप्पणीकारों ने बार–बार बताया है कि आपातकाल लागू करने और उसके बाद की साजिशों के लिए वह स्वयं श्रीमती गांधी से कम जिम्मेदार नहीं थे। आंतरिक आपातकाल और प्री–सेंसरशिप लागू करने पर प्रिंट मीडिया की प्रतिक्रिया को दो चरणों में विभाजित किया जा सकता है: प्रारंभिक प्रतिक्रिया स्वतंत्रता के नुकसान के लिए निराशा की जबरदस्त भावना थी और सदमे और अविश्वास की भावना थी, जो प्रेस के साथ–साथ स्वतंत्र थी। लोकतंत्र का स्तंभ मानी जाने वाली न्यायपालिका खतरे में थी।

अधिकांश मुख्यधारा समाचार पत्रों की बाद की प्रतिक्रिया अपरिहार्य की स्वीकृति थी। सरकार के दबाव के आगे वे झुक गये। कुछ साहसी और विरोध करने वाली आवाजें थीं लेकिन उनके संचालन और अर्थशास्त्र पर सरकार के लगातार हमले के कारण उनकी संख्या कम हो गई। जैसा कि एल.के. तत्कालीन प्रमुख विपक्षी नेता और बाद में मोरारजी देसाई और अटल बिहारी वाजपेयी सरकार में मंत्री रहे आडवाणी ने एक साक्षात्कार में रेखांकित किया, "जब श्रीमती गांधी ने मीडिया को झुकने के लिए कहा, तो वे रेंगने लगे"।[4] इस टिप्पणी से मीडिया की अधिकांश प्रतिक्रिया को संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

जब जवाहरलाल नेहरू प्रधान मंत्री थे तो उनकी बेटी इंदिरा गांधी उनके द्वारा आयोजित कार्यक्रमों में आधिकारिक परिचारिका बन गईं। यहां उन्होंने विश्व नेताओं के साथ कूटनीति के गुर सीखे। इंदिरा 1955 में कांग्रेस पार्टी में शामिल हुईं और 1959 में इसकी अध्यक्ष बनीं। 1966 में लाल बहादुर शास्त्री के आकस्मिक निधन पर इंदिरा गांधी भारत के प्रधान मंत्री के पद पर आसीन हुईं। आमतौर पर यह माना जाता है कि कांग्रेस के बुजुर्गों ने इंदिरा को एक समझौतावादी उम्मीदवार के रूप में चुना क्योंकि उन्हें लगा कि उन्हें आसानी से ढाला जा सकता है और वह लचीली थीं। लेकिन जैसा कि कोहली और बसु[5] ने स्पष्ट रूप से कहा, "1966 में प्रधान मंत्री पद के लिए एक समझौतावादी उम्मीदवार के रूप में इंदिरा गांधी को चुनने के पीछे कांग्रेस के कुलीन वर्ग की गणना एक तरह से सटीक थी। नेहरू की बेटी के रूप में वह पार्टी को सत्ता में बने रहने के लिए पर्याप्त चुनावी समर्थन जुटाएंगी। लेकिन वे यह मानने में ग़लत थे जी वह एक कमजोर महिला होगी जिसे आसानी से बरगलाया जा सकता है। प्रधान मंत्री पद पर उनके लचीलेपन और दृढ़ता ने कांग्रेस पार्टी के अभिजात वर्ग को आश्चर्यचकित कर दिया। हालाँकि पार्टी में उनका कोई ज़्यादा संगठनात्मक आधार नहीं था, फिर भी उन्होंने अपनी सरकार पर नियंत्रण हासिल कर लिया।[6] कांग्रेस कार्य समिति के वरिष्ठों ने उनके सत्ता में बढ़ने के खतरों को महसूस किया और उन्हें पार्टी से बाहर करने की मांग की। श्रीमती गांधी ने कांग्रेस के "कुलीनों" पर बाजी पलट दी। उन्होंने 1969 में पार्टी के महत्वपूर्ण नेता और अपने विख्यात विरोधियों में से एक मोरारजी देसाई को वित्त मंत्री के पद से हटा दिया और वित्त मंत्रालय खुद अपने हाथ में ले लिया। उन्होंने रातोंरात बैंकों का राष्ट्रीयकरण और रियासतों से विशेष विशेषाधिकार वापस लेने जैसी कुछ जन–समर्थक नीतियां लागू कीं। आम जनता ने उनकी सराहना की और उनकी लोकप्रियता बढ़ गई।

1969 में एक और घटना ने पार्टी में अपने विरोधियों को हराने और सत्ता के एकमात्र केंद्र के रूप में उभरने की उनकी प्रतिबद्धता की ओर इशारा किया। तत्कालीन राष्ट्रपति जाकिर हुसैन की मृत्यु के बाद कांग्रेस पार्टी ने इंदिरा गांधी की इच्छा के विरुद्ध एन. संजीव रेड्डी को राष्ट्रपति पद का उम्मीदवार नामित किया। रेड्डी के पक्ष में व्हिप लागू करने के बजाय, इंदिरा गांधी ने एक खुले पत्र में कांग्रेस सांसदों और विधायकों से आगामी राष्ट्रपति चुनाव में "अपनी अंतरात्मा की आवाज़ के अनुसार मतदान करने" का आग्रह किया।[7] लगभग एक तिहाई कांग्रेस सदस्यों ने पार्टी नेतृत्व की अवहेलना की और तत्कालीन उपराष्ट्रपति, स्वतंत्र उम्मीदवार वी. वी. गिरि को वोट दिया, जो मामूली अंतर से जीते थे। मामला तूल पकड़ गया और तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष निजलिंगप्पा तथा अन्य लोगों ने श्रीमती गांधी को पार्टी से निकाल दिया। कांग्रेस पार्टी विभाजित हो गई. इंदिरा गांधी ने एक प्रतिद्वंद्वी संगठन, कांग्रेस (आर) की स्थापना की। लोकसभा शक्ति परीक्षण में कांग्रेस के 288 सांसदों में से 220 सांसद श्रीमती गांधी के प्रति वफादार रहे।

1971 के संसदीय चुनावों में श्रीमती गांधी की लोकप्रियता ने उनकी भारी जीत सुनिश्चित की। जैसे ही वह देश में सत्ता के शिखर पर पहुंचीं, अन्यत्र समस्याएं पैदा हो गईं। पूर्वी और पश्चिमी पाकिस्तान के बीच खूनी संघर्ष हुआ. बांग्लादेश के विचार को साकार करने में इंदिरा गांधी ने निर्णायक भूमिका निभाई। बांग्लादेश मुक्ति संग्राम में इंदिरा गांधी की राजनीतिक और व्यक्तिगत भूमिका ने उन्हें भारतीय राजनीति की "लौह महिला" के रूप में स्थापित किया[8] और उन्हें अंतर्राष्ट्रीय पहचान दिलाई। बीएसएफ और रॉ के साथ भारतीय सेना की गतिविधियों के समन्वय के उनके प्रयासों को एक रणनीतिक मास्टरस्ट्रोक के रूप में देखा जाता है जिसने 1971 में पाकिस्तान के खिलाफ युद्ध जीता था। उन्होंने पाकिस्तानी सेना के अत्याचारों से भाग रहे 10 मिलियन बांग्लादेशियों को शरण देने के लिए भारतीय सीमा खोली थी। और बांग्लादेश की निर्वासित सरकार को बसाने में मदद की। इतना ही नहीं, जैसा कि प्रख्यात पत्रकार बी.जी. वर्गीस ने बताया कि "वह दुनिया भर में बांग्लादेश में नरसंहार और लाखों शरणार्थियों के भारत आने को उजागर करने के लिए गईं"[9]। भारत के हस्तक्षेप और उसके बाद बांग्लादेश के गठन ने दक्षिण एशिया का आकार बदल दिया और कई सम्मेलनों को नष्ट कर दिया। जैसा कि श्रीराधा दत्ता और कृष्णन श्रीनिवासन ने कहा, "भारतीय विदेश नीति हथियारों के बल पर विजयी हुई थी। अमेरिकियों और चीनियों को हार का सामना करना पड़ा, और वे बांग्लादेश को छोड़कर, भारतीय बलिदान और समर्थन के लिए आभारी थे।''[10] इस उपलब्धि ने इंदिरा गांधी को नेता के रूप में स्थापित किया।

इंदिरा गांधी और आपातकाल से पहले की अवधि

बांग्लादेश मुक्ति संग्राम में सफलता ने कार्यालय में श्रीमती गांधी के प्रभाव और शक्ति को बढ़ा दिया। कांग्रेस पार्टी के भीतर सत्ता संरचना भी बदल गई। चाटुकारिता में वृद्धि हुई, श्रीमती गांधी के लिए पंथ नेता का दर्जा मजबूत हुआ जिसके परिणामस्वरूप आलोचना के प्रति उनकी असहिष्णुता पैदा हुई। श्रीमती गांधी के शासन में "सत्तावादी प्रवृत्ति"[11] भी स्पष्ट हो रही थी।

लेकिन विदेश नीति के क्षेत्र में उनकी जीत और भारतीय राजनीतिक परिदृश्य में उनकी सर्वज्ञ स्थिति के बावजूद, वह देश के भीतर बढ़ रहे राजनीतिक असंतोष पर लगाम नहीं लगा सकीं। 1973 में गुजरात में भोजन की कमी और खाद्य कीमतों में वृद्धि को लेकर एक जन आंदोलन छिड़ गया। नव निर्माण आंदोलन के कारण राज्य विधानमंडल को भंग कर दिया गया और राज्य में राष्ट्रपति शासन लगाया गया। जब जून 1975 में दोबारा चुनाव हुए तो कांग्रेस विपक्षी दलों के गठबंधन से हार गई। बिहार में, अप्रैल 1974 में, गांधीवादी नेता जयप्रकाश नारायण, जिन्हें जेपी के नाम से जाना जाता है, ने कांग्रेस की राज्य सरकार के खिलाफ एक छात्र आंदोलन के पीछे अपना ज़ोर लगाया। "संपूर्ण क्रांति" के उनके आह्वान ने एक उत्तेजित जन आंदोलन को जन्म दिया। आपातकाल लागू होने से ठीक पहले देश की स्थिति को समझने के लिए मौजूदा राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था के खिलाफ जेपी की भूमिका और धर्मयुद्ध पर यहां थोड़ा विस्तार से चर्चा करने की आवश्यकता है। आजादी के बाद के दिनों में जेपी के नाम से लोकप्रिय हुए जयप्रकाश नारायण के रूप में कांग्रेस को असली चुनौती मिली। जेपी हमेशा संसदीय लोकतंत्र के आलोचक थे और उन्होंने "पार्टी–रहित लोकतंत्र" की वकालत की, जो कई लोगों के अनुसार एक अस्पष्ट अवधारणा थी और राजनीतिक वास्तविकता से दूर थी। "संपूर्ण क्रांति" या "संपूर्ण क्रांति" का उनका आह्वान भी एक अस्पष्ट और "अस्पष्ट" अवधारणा थी। बिपन चंद्रा के रूप में, आदित्य मुखर्जी और मृदुला मुखर्जी[12] ने कहा, "जेपी किसी भी स्तर पर यह समझाने में सक्षम नहीं थे कि राजनीतिक दलों के बिना राजनीतिक व्यवस्था में क्या शामिल होगा या इसमें लोकप्रिय लोगों को कैसे व्यक्त किया जाएगा या लागू किया जाएगा।" हालांकि जेपी ईमानदारी, निस्वार्थता, बलिदान और नागरिक स्वतंत्रता और सामाजिक व्यवस्था के चैंपियन थे, लेकिन

उनके राजनीतिक आदर्शों की अस्पष्ट और खराब परिभाषित के रूप में आलोचना की गई है। फिर भी, यकीनन, आजादी के बाद से जेपी आंदोलन भारत के राजनीतिक परिदृश्य में सबसे उल्लेखनीय क्षणों में से एक था। जैसे ही जेपी ने देश में व्याप्त भारी असंतोष को ध्यान में रखते हुए इंदिरा गांधी के खिलाफ एक राष्ट्रव्यापी आंदोलन को मजबूर किया, वह एक ऐसे युग में विरोध की आवाज का प्रतिनिधित्व करने लगे जब आधिकारिक विरोध लगभग गायब हो गया था।[13] वह कांग्रेस के तीन दशकों के भ्रष्टाचार, कुशासन और अयोग्यता से तंग आकर लोगों का प्रतिनिधित्व करने आए थे। जेपी आंदोलन का मुख्य औचित्य भारतीय जीवन और राजनीति में भ्रष्टाचार को समाप्त करना था जिसका स्रोत कथित तौर पर इंदिरा गांधी थीं और लोकतंत्र की रक्षा करना था जो उनके तानाशाही व्यक्तित्व और उनकी सत्तावादी प्रशासनिक शैली से खतरे में था। जेपी अक्सर कहते थे कि इंदिरा गांधी का पद पर बने रहना "भारत में लोकतंत्र के अस्तित्व के साथ असंगत है।"[14] कुछ महीनों के बाद होने वाले संसदीय चुनावों में श्रीमती गांधी और जेपी के बीच चुनावी टकराव के लिए मंच तैयार किया गया था।

लेकिन 12 जून 1975 को एक अदालती फैसले ने पूरी राजनीतिक स्थिति बदल दी। चुनावी कदाचार की एक याचिका पर सुनवाई करते हुए इलाहाबाद उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति जगमोहनलाल सिन्हा ने श्रीमती गांधी को 1971 के संसदीय चुनावों में भ्रष्ट प्रचार प्रथाओं में शामिल होने का दोषी ठहराया और उनके चुनाव को अमान्य घोषित कर दिया। सजा का मतलब यह था कि वह प्रधान मंत्री के पद पर भी नहीं रह सकती थीं। जेपी और विपक्ष ने मौके का फायदा उठाया, उन पर "भ्रष्ट रूप से प्राप्त पद से चिपके रहने" का आरोप लगाया और उनसे तत्काल इस्तीफे की मांग की। राष्ट्रीय राजधानी में एक रैली में जेपी और उनके सहयोगियों ने उन्हें इस्तीफा देने के लिए मजबूर करने के लिए देशव्यापी सविनय अवज्ञा आंदोलन की घोषणा की। अपने भाषण में जेपी ने लोगों से सरकार के लिए काम करना असंभव बनाने को कहा और सशस्त्र बलों, पुलिस कर्मियों और नौकरशाही से उन आदेशों को मानने से इनकार करने को कहा जिन्हें वे "अवैध और असंवैधानिक" मानते थे। श्रीमती गांधी ने हल्की प्रतिक्रिया देते हुए 26 जून, 1975 को पूरे देश में आंतरिक आपातकाल की स्थिति घोषित कर दी। यह स्वतंत्र भारत में लोकतंत्र के लिए सबसे काला समय था।

1975 में भारत के खिलाफ आंतरिक विधायकों की घोषणा के सबसे महत्वपूर्ण प्रभावों में से एक प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी का मानना था कि उनके समाचार के अनुसार, बांग्लादेश के उच्च न्यायालय के फैसले के बाद लोग भड़क गए और सीरिया की स्थिति पैदा हो गई। 26 जून, 1975 को सरकार ने निर्णय लिया कि समाचार दिग्गजों और खिलाड़ियों में "अपमानजनक" और "दुर्भावनापूर्ण" लेखन को प्रतिबंधित करने के लिए एक कानून पारित किया जाना चाहिए, समाचार फिल्मों का पुनर्निर्माण किया जाएगा और भारतीय प्रेस परिषद को बंद कर दिया जाएगा। ऐसा महसूस हुआ कि समाचार जगत के दिग्गजों और कलाकारों को सरकार की नीति की समीक्षा के संबंध में विज्ञापन जारी करना चाहिए। इस प्रकार देश के एकमात्र स्वतंत्र मीडिया प्रेस सेंसरशिप लागू किया गया। हालाँकि, 'तथाकथित' स्वतंत्र प्रेस की प्रतिक्रिया में क्रांति नहीं रही और कुछ कम्युनिस्ट भारत को ठीक किया गया, प्रिंट मीडिया ने एक अनिच्छुक और अनिच्छुक चित्र पेश किया। जिस सहजता ने अपनी स्वतंत्रता का त्याग करते हुए सभी को चौंका दिया।

इंडिया न्यूज और फीचर एलायंस के प्रमुख दुर्गा दास[15] ने कहा, "इंदिरा गांधी ने अखबार के मूल दर्शन को स्वीकार नहीं किया कि उसे लोगों की समस्याओं को बताना है, न कि सरकार के दृष्टिकोण को, कि एक स्तंभकार को असहमति की आवाज को गलियारों में ले जाना चाहिए बिजली की।" भारत में प्रेस के प्रति उनकी नीति और दृष्टिकोण उनके शासनकाल की शुरुआत से ही यही रहा है और इसलिए आपातकाल के दौरान सत्ता का उनका ज़बरदस्त दुरुपयोग कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

आपातकाल के बाद अधिकांश लोकतांत्रिक सिद्धांतों को बहाल किया गया और साथ ही प्रेस की स्वतंत्रता भी बहाल की गई। आपातकाल के दौरान प्रिंट मीडिया के खिलाफ श्रीमती गांधी और उनके प्रशासन द्वारा की गई ज्यादतियों को मामले की जांच के लिए बाद की जनता पार्टी सरकार द्वारा गठित दो आयोगों द्वारा संहिताबद्ध किया गया है। शाह आयोग[16] के निष्कर्षों की मुख्य बातें मीडिया की स्वतंत्रता को निलंबित करने के लिए योजनाबद्ध और बेधड़क सरकारी हस्तक्षेप की ओर इशारा करती हैं।

1. सरकार ने सेंसरशिप के तंत्र को स्थापित करने के लिए समय निकालने के लिए, आपातकाल की घोषणा के अगले दिन, 26 जून, 1975 को अखबार कार्यालयों की बिजली काटने का सहारा लिया। तीन दिन बाद जब सेंसरशिप मशीनरी लागू हुई, तो बिजली आपूर्ति फिर से शुरू हुई।
2. भारतीय सूचना और प्रसारण मंत्रालय ने समाचार पत्रों को शत्रुतापूर्ण, मित्रवत या तटस्थ के रूप में नामित किया और शत्रुतापूर्ण और तटस्थ समाचार पत्रों से विज्ञापन रोकने या कम करने और मित्रवत समाचार पत्रों में विज्ञापन बढ़ाने के निर्देश जारी किए।
3. सूचना और प्रसारण मंत्रालय ने सरकार के प्रति प्रत्येक समाचार पत्र के रवैये को निर्धारित करने और तदनुसार उसे दंडित करने के लिए आपातकाल से पहले छह महीने की अवधि में समाचार पत्रों के अध्ययन का आदेश दिया।
4. सरकार ने राज्य एकाधिकार, यानी राज्य व्यापार निगम के माध्यम से अखबारी कागज की आपूर्ति पर अपना नियंत्रण कड़ा कर दिया।

इंदिरा सरकार ने पत्रकारों के अधिकारों पर अंकुश लगाने और प्रेस रिपोर्टों के दायरे को हर संभव तरीके से सीमित करने वाले कानून बनाए। अधिकांश मालिकों, मालिकों और संपादकों द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण से दायरा और भी सीमित हो गया था। आपातकाल और सरकार के खिलाफ शुरुआती नाराजगी और विरोध के बाद, जैसा कि इस पेपर में दर्शाया गया है, अधिकांश मीडिया ने सरकार के दृष्टिकोण का पालन किया। सौभाग्य से कुछ लोगों ने अलग दृष्टिकोण अपनाया और विरोध और असहमति का सहारा लिया लेकिन वे समुद्र में एक बूंद थे। जबकि सरकार के अवैध और अनैतिक रुख की दुनिया भर में कड़ी आलोचना हो रही है और इंदिरा गांधी, उनके बेटे संजय और उनके चाटुकार गांधी परिवार का समर्थन करने वाली चींटियों की निंदा की गई, प्रिंट मीडिया के बारे में भी बहुत उत्साहवर्धक बातें नहीं कही जा सकतीं। आपातकाल की घोषणा के समय यह सरकारी नियंत्रण से स्वतंत्र था, लेकिन इसने अपने पत्रकारिता मानकों को बनाए रखने और अपनी नैतिक जमीन को संरक्षित करने के लिए बहुत कम प्रयास किया।

मोरारजी देसाई की बाद की सरकार का प्रेस के प्रति उदार दृष्टिकोण था और भारतीय प्रेस ने अपनी शक्ति और भूमिका पुनः प्राप्त कर ली। लेकिन सरकारों और सरकारी प्रमुखों को मीडिया की स्वतंत्रता या नैतिकता नहीं सौंपी जा सकती। इन दोनों का पोषण और संरक्षण मीडिया को स्वयं करना होगा अन्यथा इसकी स्वतंत्र कार्यप्रणाली पर लगातार खतरा मंडराता रहेगा। 1980 में इंदिरा गांधी के सत्ता में वापस आने के बाद उन्होंने एक से अधिक बार नेशनल प्रेस के संचालन के तरीके के प्रति अपनी नापसंदगी का संकेत दिया। पदभार ग्रहण करने के अगले दिन, 15 जनवरी को, श्रीमती गांधी ने प्रेस को अधिक वस्तुनिष्ठ होने और आत्म–संयम बरतने की सलाह दी। जैसा कि थॉमस जेफरसन ने रेखांकित किया था, "शाश्वत सतर्कता ही स्वतंत्रता की कीमत है",[17] भारत में प्रेस को सतर्क और जागरूक रहकर

अपनी भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर किसी भी प्रयास को रोकने की जरूरत है। यह न केवल प्रेस की स्वतंत्रता को कायम रखेगा बल्कि परिणामस्वरूप अधिक नैतिक मानकों को भी बनाए रखेगा क्योंकि नैतिकता और स्वतंत्रता एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। अधिक स्वतंत्रता के साथ अधिक वित्तीय स्वायत्तता आती है और इसके साथ उच्च नैतिक आधार बनाए रखना और आपातकाल जैसे हमलों का सामना करना आसान हो जाता है।

आपतकाल में लागू किए कानूनों की दलिलें

26 जून की सुबह 2:30 से 3:00 बजे के बीच "दरवाजे पर दस्तक" हुई। दिन ढलने से पहले लगभग सभी भारतीय विपक्षी नेताओं, कुछ खातों के अनुसार 750, को आंतरिक सुरक्षा रखरखाव और भारत की रक्षा नियमों के तहत गिरफ्तार कर लिया गया था। उन्हें किसी भी प्रकार की कानूनी सहायता से वंचित कर दिया गया। बाद में उस सुबह भारत के राष्ट्रपति ने, प्रधान मंत्री के निर्देशन में कार्य करते हुए, बढ़ती राष्ट्रीय अव्यवस्था और अराजकता को रोकने के लिए एक आवश्यक उपाय के रूप में संविधान के अनुच्छेद 352 के तहत आंतरिक आपातकाल की स्थिति की घोषणा की। प्रेस सेंसरशिप लागू कर दी गई। संविधान में संशोधन जोड़े गए जिससे कार्यकारी कृत्यों और आपातकालीन कानूनों की चुनौतियों को रोककर कार्यपालिका को व्यापक शक्तियाँ प्रदान की गईं। अहस्तांतरणीय अधिकारों का संरक्षण संक्षिप्त या हटा दिया गया। 1976 में होने वाले आम चुनावों को 1978 तक के लिए स्थगित कर दिया गया। भारतीय संविधान की लोकतांत्रिक भावना को खत्म कर दिया गया। सकारात्मक पक्ष यह है कि बसें और रेलगाड़ियाँ निर्धारित समय पर चलने लगीं और कार्यालयों में घड़ियाँ वर्षों में पहली बार निर्धारित की गईं। नौकरशाहों को जनता के प्रति विनम्र रहना आवश्यक था। एक बीस–सूत्रीय योजना की घोषणा की गई जो भारत को अपने पैरों पर खड़ा करेगी और उस गरीबी से लड़ने के लिए आवश्यक "अनुशासन" लागू करेगी जिसने उसे पीछे खींच रखा था। हालाँकि, परिवर्तन लाने के लिए, हजारों असंतुष्टों को गिरफ्तार किया गया और चुप करा दिया गया। झुग्गी–झोपड़ियों को साफ़ करने का कभी–कभी क्रूर कार्यक्रम शुरू किया गया था। जीवंत भारतीय प्रेस को खामोश कर दिया गया। बढ़ती जनसंख्या पर अंकुश लगाने के लिए, एक अनिवार्य नसबंदी कार्यक्रम चलाया गया, दुर्भाग्य से एक नौकरशाही मशीन द्वारा जो अक्सर लोगों की भावनाओं के प्रति अंधी थी। फिर, 18 जनवरी, 1977 को अप्रत्याशित रूप से, श्रीमती गांधी ने खुद को पलट दिया और घोषणा की कि 16 मार्च, 1977 को चुनाव होगा। आपातकाल को आंशिक रूप से रद्द कर दिया गया, चुनाव प्रचार की अनुमति दी गई, और विपक्षी नेताओं को जेल से रिहा कर दिया गया। स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव सुनिश्चित करने के लिए एक चुनाव आयोग की स्थापना की गई। इसके बाद की अवधि को "दूसरी शांतिपूर्ण क्रांति" कहा गया है – पहली 1947 में अंग्रेजों से भारत की आजादी थी। इस दूसरी क्रांति में उन लोगों के बीच राजनीतिक जागरूकता बढ़ाना शामिल था जो "बड़े पैमाने पर अशिक्षित, उदासीन प्रतीत होते थे, और सरकार द्वारा लगाए गए दमनकारी कानूनों के लिए इस्तीफा दे दिया" (वी द पीपल) चर्चा और बहस छिड़ गई। 22 मार्च को चुनाव परिणाम घोषित हुए: श्रीमती गांधी और उनकी पार्टी भारी बहुमत से हार गयी। भारतीय लोगों ने बात की थी और उनका नेतृत्व करने के लिए प्रमुख विपक्षी दल जनता पार्टी को चुना था। यह सुनिश्चित करने के लिए कि भारत के लोकतंत्र को फिर से खतरा न हो, अनुच्छेद 352 में बुनियादी बदलाव किए गए। आपातकालीन शक्तियां रद्द नहीं की गईं, लेकिन प्रधान मंत्री को अब सलाह लेने के लिए मंत्रिपरिषद के साथ औपचारिक रूप से मिलना होगा। राष्ट्रपति के पास अब आपातकाल घोषित करने या न करने के मामले में अधिक आवाज है, हालाँकि वह अभी भी मंत्रियों के अंतिम निर्णय से बंधे हैं। अंत में, सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि भले ही आपातकाल के दौरान 7 बुनियादी स्वतंत्रता को अभी भी प्रतिबंधित किया जा सकता है, लेकिन अनुच्छेद 21 और 22 के तहत संरक्षित अधिकारों को छीना नहीं जा सकता है। गिरफ्तारी के समय जीवन, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और व्यक्तिगत अधिकार संविधान द्वारा स्थायी रूप से संरक्षित हैं। 1980 के राष्ट्रीय चुनाव में श्रीमती गांधी सत्ता में लौटीं। 1975–77 के बीच उनके कार्यों के लिए जनता ने उन्हें माफ कर दिया था। 1984 में जब उनकी हत्या हुई तो देश ने गहरा शोक मनाया। विपक्षी दल फल–फूल रहे हैं और राजनीतिक स्वतंत्रता मजबूत है।

44वें संशोधन में अब "आंतरिक अशांति" शब्द की जगह "सशस्त्र विद्रोह" शब्द ले लिया गया है। 42वां संशोधन अधिनियम राष्ट्रपति को देश के किसी भी हिस्से में आपातकाल घोषित करने में सक्षम बनाता है। यदि देश के उस हिस्से की स्थिति सामान्य हो जाती है तो उस हिस्से से आपातकाल हटाया जा सकता है लेकिन देश के अन्य हिस्सों में यह जारी रह सकता है। इंदिरा गांधी द्वारा घोषित आपातकाल वैध रूप में नहीं है क्योंकि विपक्षी दल ने प्रधानमंत्री को अपने पद से इस्तीफा देने के लिए मजबूर करने के लिए एक आंदोलन शुरू करने का आह्वान किया है क्योंकि लोकसभा में उनका चुनाव इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा अमान्य घोषित कर दिया गया था।

अगर हम भारत में राष्ट्रीय आपातकाल की बात करें तो तीसरा राष्ट्रीय आपातकाल सही समय पर घोषित नहीं किया गया और सही उद्देश्य के लिए घोषित नहीं किया गया। तीसरे राष्ट्रीय आपातकाल को छोड़कर बाकी दो आपातकाल सही और सही उद्देश्य से घोषित किये गये थे। 1975 में इंदिरा गांधी द्वारा घोषित आपातकाल के परिणामस्वरूप 1975 से 1977 तक 21 महीने का भारतीय इतिहास का सबसे अंधकारमय काल रहा।

संकट के समय भारत जैसा लोकतांत्रिक राष्ट्र उनसे अपनी सामान्य प्रक्रिया के तहत नहीं निपट सकता, इसलिए राष्ट्रपति को आपातकाल की घोषणा और तत्काल कार्रवाई का अधिकार दिया गया है। यदि हम अनुच्छेद 20 और 21 के बारे में बात करते हैं, जहां अनुच्छेद 20 कुछ अधिकारों के बारे में बात करता है जिन्हें कुछ उल्लंघनों के लिए निंदा के संबंध में सुरक्षा की आवश्यकता होती है और सुरक्षा में पूर्वव्यापी कानून 2, दोहरा खतरा 3 और आत्म दोषारोपण के खिलाफ अधिकार 4 शामिल हैं। जबकि अनुच्छेद 21 जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार की बात करता है, जहां हर व्यक्ति को स्वाभिमानी जीवन जीने का अधिकार है। अनुच्छेद 21 के तहत मौलिक अधिकारों का उद्देश्य व्यक्तिगत स्वतंत्रता के विनाश को रोकना है। जीवन के अधिकार का अर्थ है गरिमापूर्ण और स्वाभिमानपूर्ण जीवन जीना।

मौलिक अधिकार भारतीय संविधान के स्तंभ हैं, अनुच्छेद 21 इसका मूल है। चूँकि ये अधिकार बुनियादी संरचना हैं इसलिए इन्हें निलंबित नहीं किया जा सकता। अगर हम राज्य में आपातकाल की बात करें तो मनमाने ढंग से राष्ट्रपति शासन लागू करने के लिए केंद्र सरकार को हर तरफ से आलोचना झेलनी पड़ी। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 356 में कहा गया है कि केंद्र सरकार को देश में कानून और व्यवस्था बनाए रखने के लिए व्यापक शक्तियों का अधिकार है। यह राष्ट्र की पूर्णता और अखंडता है। लेकिन तथ्य या वास्तविक परिदृश्य इस शक्ति के दुरुपयोग के बारे में बताता है और इसका उदाहरण 1966 से 1977 के बीच 39 बार राज्य आपातकाल लागू करना है। दोनों सरकारों यानी इंदिरा गांधी सरकार और जनता पार्टी सरकार ने इस शक्ति का इस्तेमाल राज्य को भंग करने के लिए किया था। विपक्षी दलों द्वारा शासित सरकार, बाद में सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 356 के दायरे को कम करने के लिए कुछ सख्त और अनिवार्य दिशानिर्देश स्थापित किए और जिसके परिणामस्वरूप 2000 की शुरुआत से, राष्ट्रपति शासन लगाने की घटनाओं में

काफी कमी आई है। सरकारिया आयोग के अनुसार अनुच्छेद 356 का उपयोग तभी किया जाएगा जब संवैधानिक मशीनरी की पूर्ण विफलता को रोकने के लिए कोई अन्य विकल्प नहीं होगा। पंजाब और जम्मू–कश्मीर में 3 साल तक आपातकाल लगा रहा जो अब तक का सर्वाधिक है।

राष्ट्रीय आपातकाल के प्रभाव

1. राष्ट्रीय आपातकाल के समय केंद्र की कार्यपालिका की शक्ति किसी भी राज्य को उस शक्ति का प्रयोग करने के तरीके को निर्देशित करने तक विस्तारित होती है।
2. राज्य सूची से संबंधित कानून जरूरत पड़ने पर किसी भी विषय पर संसद द्वारा बनाये जाते हैं।
3. लोकसभा द्वारा कार्यकाल को एक वर्ष की अवधि के लिए बढ़ाया जा सकता है। लेकिन यदि उद्घोषणा का संचालन बंद हो जाता है तो इसे बढ़ाया नहीं जा सकता। इसी तरह राज्य विधानसभाओं का कार्यकाल भी बढ़ाया जा सकता है.
4. राष्ट्रपति को राजस्व वितरण के प्रावधान को संशोधित करने का अधिकार है।
5. राष्ट्रीय आपातकाल के कारण अनुच्छेद 358 के अनुसार छह स्वतंत्रता अधिकार स्वतः ही निलंबित हो जाते हैं और यह निलंबन आपातकालीन अवधि के अंत तक जारी रहता है। लेकिन 44वें संशोधन के अनुसार मौलिक अधिकार केवल सशस्त्र विद्रोह के आधार पर ही निलंबित किये जाते हैं। अनुच्छेद 20 और 21 को छोड़कर अन्य सभी अनुच्छेद निलंबित किये जा सकते हैं।

भारत में आपातकालीन प्रावधान का उपयोग और दुरुपयोग

सशस्त्र विद्रोह, युद्ध या बाहरी आक्रमण जैसी आपात स्थितियों के लिए मौजूदा प्रावधान पर्याप्त हैं। लेकिन कुछ खामियां हैं जिनमें संशोधन की जरूरत है।

सबसे पहले, मौलिक अधिकारों का निलंबन और ऊपर से संविधान के अनुच्छेद 226 का निलंबन, हम सभी जानते हैं कि जब किसी मौलिक अधिकार का उल्लंघन होता है तो हम अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय में जाते हैं, लेकिन उसी समय यदि इन्हें निलंबित कर दिया जाता तो कहां। क्या आम लोग जाते हैं? यह स्थिति प्रसिद्ध ए.डी.एम. जबलपुर बनाम शिवाकांत शुक्ला मामले में घटित होती है जहां राष्ट्रपति अनुच्छेद 359(1) के तहत भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14,19,20 और 21 को निलंबित करने के आदेश जारी करते हैं। और आंतरिक सुरक्षा रखरखाव अधिनियम 1971 के अनुसार दुनिया भर में सैकड़ों लोगों को गिरफ्तार किया गया और हिरासत में लिया गया।

दूसरे, राष्ट्रीय आपातकाल को राज्य आपातकाल पर ओवरलैप करना। भारत में केवल छत्तीसगढ़ और तेलंगाना नामक दो राज्य ऐसे राज्य हैं जहां कभी भी राज्य आपातकाल लागू नहीं किया गया है, बाकी सभी 27 राज्यों को 44 वें संशोधन अधिनियम 1978 के बाद कवर किया जा रहा है, चीजें काफी बदल गई हैं। राष्ट्रीय आपातकाल घोषित हुए बहुत साल हो गए हैं और राष्ट्रीय आपातकाल का दायरा इतना कम हो गया है कि राष्ट्रीय आपातकाल घोषित करना लगभग असंभव है। पिछली बार राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा 1975 में आंतरिक अशांति के कारण 21 महीने की अवधि के लिए भारत की प्रधान मंत्री इंदिरा गांधी द्वारा की गई थी। आपातकाल के कारण मौलिक अधिकारों का उल्लंघन हुआ और बड़े पैमाने पर लोगों को परेशानी उठानी पड़ी। प्रेस और मीडिया को सबसे ज्यादा नुकसान हुआ, प्रकाशन सरकार की अनुमति के बाद ही किया जाता है। आपातकाल की घोषणा का विरोध करने वाले महान नेताओं को बिना किसी कारण के जेल में डाल दिया गया। आपातकाल की घोषणा देश के हित के लिए की गई थी लेकिन यह हर व्यक्ति के लिए सबसे बुरे सपने में बदल गया है। 1975 में सत्ता, सरकार गलत हाथ में थी जिसके कारण चीजें गलत हो गईं।

निष्कर्ष

जब हम आपातकालीन प्रावधानों से निपटते हैं, तो यह देखना आसान होता है कि भारतीय संविधान में प्रावधान किस उद्देश्य के लिए उपलब्ध हैं। लेकिन जब हम इसके लिए अध्ययन करते हैं तो हमें एहसास होता है कि भले ही ये प्रावधान भारत की सुरक्षा और व्यक्ति के मौलिक अधिकारों की सुरक्षा के लिए बनाए गए हों, लेकिन ये प्रावधान स्वयं कार्यपालिका को कई कठोर विवेकाधीन शक्तियां प्रदान करते हैं। कार्यपालिका को शक्तियों का निष्पादन संघीय ढांचे को एकात्मक में बदल देता है। हम अभी भी सत्तारूढ़ दल और कार्यपालिका द्वारा सत्ता के अनुकूल उपयोग को सुनिश्चित करने के लिए नियंत्रण और संतुलन प्रणाली लाने के बारे में सोचते हैं जो 1975 में तीसरे राष्ट्रीय आपातकाल के समय मौजूद नहीं थी।

हमारा संविधान ऐसी शक्तियों के कार्यान्वयन का प्रावधान करता है आपातकाल के समय व्यक्ति के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन हो सकता है, 1975 में तीसरा राष्ट्रीय आपातकाल आंतरिक गड़बड़ी (जिसे बाद में सशस्त्र विद्रोह के रूप में जाना गया) के कारण घोषित किया गया था जिसमें कई व्यक्तियों के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन किया गया था।

संदर्भ

1. अतुल कोहली और अमृता बसु, द मेकिंग ऑफ द मॉडर्न इंडियन स्टेट, इंट्रोडक्शन टू पॉलिटिक्स ऑफ द डेवलपिंग वर्ल्ड, मार्क केसलमैन, जोएल क्राइगर और विलियम ए. जोसेफ द्वारा संपादित, (छठा संस्करण), सेंगेज लर्निंग, 2012, (अध्याय 2, खंड 1), पृ. 58.
2. प्रणय गुप्ते, इंदिरा गांधी की एक राजनीतिक जीवनी, पेंगुइन वाइकिंग।
3. सुनील सेठी, अगर संजय गांधी जीवित होते, http://indiatoday.intoday
4. शरद कारखानिस, भारतीय राजनीति और प्रेस की भूमिका, विकास पब्लिशिंग हाउस, 1981
5. अतुल कोहली और अमृता बसु, द मेकिंग ऑफ द मॉडर्न इंडियन स्टेट, इन इंट्रोडक्शन टू पॉलिटिक्स ऑफ द डेवलपिंग वर्ल्ड, मार्क केसलमैन द्वारा संपादित, जोएल क्राइगर और विलियम ए. जोसेफ, (छठा संस्करण), सेंगेज लर्निंग, 2012, (अध्याय 2, खंड 1), पृ० 58.
6. बिपन चंद्रा, आदित्य मुखर्जी और मृदुला मुखर्जी, आजादी के बाद से भारत, इंदिरा गांधी वर्ष (1969–1973) पेंगुइन बुक्स, 1999.
7. स्प्लिट वाइड ओपन, http://indiatoday.intoday.in।
8. बिपन चंद्रा, आदित्य मुखर्जी और मृदुला मुखर्जी, स्वतंत्रता के बाद से भारत, इंदिरा गांधी वर्ष (1969–1973) पेंगुइन बुक्स, 1999, पृ० 299.
9. बांग्लादेशः गरिमा की खोज ने एक राष्ट्र को कैसे जन्म दिया, http://indiatoday.intoday.in.
10. श्रीराधा दत्ता और कृष्णन श्रीनिवासन, बांग्लादेश, द ऑक्सफोर्ड हैंडबुक ऑफ इंडियन फॉरेन पॉलिसी, डेविड एम द्वारा संपादित। मेलोन, सी. राजा मोहन, श्रीनाथ राघवन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2015, पृ० 384–397।
11. रणबीर वोहरा, द मेकिंग ऑफ इंडियाः ए पॉलिटिकल हिस्ट्री, (तीसरा संस्करण) रूटलेज प्रकाशन, 2015।
12. बिपन चंद्रा, आदित्य मुखर्जी और मृदुला मुखर्जी, इंडिया सिंस इंडिपेंडेंस, द इंदिरा गांधी इयर्स (1969–1973) पेंगुइन बुक्स, 1999, पृ. 317.

13. नीरा चंद्रहोके, द लेसन ऑफ द जेपी मूवमेंट, द हिंदू, 23 जून, 2000.
14. बिपन चंद्रा, इन द नेम ऑफ डेमोक्रेसीः जेपी मूवमेंट एंड द इमरजेंसी, पेंगुइन बुक्स, 2003.
15. के.एस. पाढ़ी और आर.एन. साहू, द प्रेस इन इंडिया, कनिस्का पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2005, पृष्ठ 157।
16. शाह जांच आयोग – तीसरी और अंतिम रिपोर्ट, 6 अगस्त, 1978।
17. पीयूसीएल बुलेटिन, www.pucl.org, जुलाई, 1982।